नियमसार, कलश १९३

इदं ध्यानमिदं ध्येयमयं ध्याता फलं च तत्।
एभिर्विकल्प-जालैर्यन्निर्मुक्तं तन्नमाम्यहम्।।१९३।।

क्या कहते हैं? आहाहा! अन्तिम में अन्तिम सार है। यह मैं चैतन्यसत्ता का ध्यान करता हूँ और चैतन्यसत्ता ध्येय है और यह ध्याता है, वह चैतन्यस्वरूप, वह फल है। इस ध्यान का आनन्द फल है। आहाहा! **ऐसे विकल्प जालों से जो मुक्त (-रहित) है,...** चैतन्यस्वरूप वस्तु सत्ता चैतन्य जानकस्वभाव। दूसरी चीज़ को भी जानते-जानते यह प्रसिद्ध करता है न? यह ज्ञान प्रसिद्ध करता है न? यह है... यह है... ऐसा राग भी वह प्रसिद्ध करता है। आहाहा! यह चैतन्यस्वरूप, इसमें एकाग्र होने पर ध्यान, ध्याता और ध्येय तथा उसका फल - ये चारों ही भेद के विकल्प जिसमें नहीं। आहाहा! यह तो (आजकल कहते हैं कि) शुभभाव से होता है। आहाहा!

वस्तु है न ? ज्ञानस्वभाव है न ? जिसमें यह ज्ञात होता है न ? यह ज्ञात होता है, वह जाननेवाला स्वयं स्वरूप है। और जिसका स्वरूप नित्य है तथा नित्य होने से उसमें उसका ध्यान करने से जो विकल्प उठते हैं, वह वस्तु का स्वरूप नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। सम्यग्दर्शन होने पर वे विकल्प नहीं होते। (सम्यग्दर्शन) होने के काल में। बाद में हों, वह अलग बात है। आहाहा!

यह ध्यान है,... यह पर्याय है। **यह ध्येय है,...** यह द्रव्य है। **यह ध्याता है...** ध्याता ध्यान करनेवाला है और उसका फल आनन्द है। **ऐसे विकल्प जालों से...** आहाहा! **ऐसे विकल्प जालों से जो मुक्त (-रहित) है,...** मुनिराज कहते हैं कि उसे, वैसा जो यह परमस्वरूप तत्त्व, परमात्मा परमस्वरूप तत्त्व... आहाहा! जिसमें कोई विकल्प नहीं, ऐसा जो परमस्वरूप तत्त्व... आहाहा! उसे **मैं नमन करता हूँ।** उसे नमन करता हूँ - यह तो निर्मल पर्याय हुई, विकल्प नहीं। उस ओर ढल गया। चैतन्यस्वरूप है, कि जो यह जड़ आदि बाह्य चीज़ें हैं, उन्हें प्रसिद्ध करता है कि यह... यह... यह... यह... उसमें स्वयं ही प्रसिद्ध है। आहाहा! उसमें यह चैतन्य स्वयं प्रसिद्ध है। अब इस चैतन्य की प्रसिद्धि की प्रसिद्धि करने के लिये ध्यान में जाए... आहाहा! विकल्प उठते हैं, वह इसका स्वरूप नहीं है। आहाहा! यहाँ तक ले जाना। वह अभी तो व्यवहार से होता है, निमित्त से होता है... आहाहा! निमित्त से भी किसी समय होता है। यह वर्णीजी ऐसा कहते थे।

अरे! प्रभु! कौन सा द्रव्य—कौन सा द्रव्य पर्याय बिना का है ? किस काल में कौन सा द्रव्य पर्याय के बिना है। आहाहा! इससे वह दूसरी पर्याय को करे, यह तो प्रश्न यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो द्रव्य एकरूप है। चैतन्यस्वरूप... चैतन्यस्वरूप ज्ञायकस्वरूप एकरूप है। एकरूप में ध्यान-ध्याता-ध्येय और उसका फल, यह चार भेद एकरूप में नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है, देवीलालजी! कहाँ के कहाँ। वह तो बाहर से यह करे, भक्ति करे, पूजा करे, गिरनार की, सम्मेदशिखर की यात्रा करे। धर्म... राग थोड़ा तो घटे। यहाँ कहते हैं जरा भी नहीं घटता।

आत्मा अभेद अखण्ड द्रव्य है। वस्तु है न ? वस्तु है, वह उसके स्वभाव से खाली नहीं होती। इसलिए जैसे वस्तु एक है, वैसे स्वभाव भी एक अभेद अखण्ड है। ऐसे अखण्ड गुण का ध्यान करना और ध्याता-ध्येय और फल का विचार करना, वह भी एक विकल्प और उपाधि है। आहाहा! इसलिए वह **ऐसे विकल्प जालों से...** आहाहा!

एभिर्विकल्प-जालै संस्कृत में है न? **ऐसे विकल्प जालों से जो मुक्त (-रहित) है, उसे (-उस परमात्मतत्त्व को) मैं नमन करता हूँ।** आहाहा! रहित है, रहित है, विकल्प जाल से रहित है। एकरूप है, उसे मैं नमन करता हूँ, यह पर्याय ली।

मुमुक्षु : सन्मुख की पर्याय।

पूज्य गुरुदेवश्री : सन्मुख की पर्याय ली। विकल्प नहीं। नमन करता हूँ। त्रिकाल एकरूप चीज़ को, अखण्ड को, अभेद को, चैतन्यसत्तावाली चीज़ को एकरूप जानकर उसे नमन करता हूँ। आहाहा! कहो, यहाँ तक धर्म की बात। यहाँ तो अभी दया पालो, व्रत पालो तो धर्म हो जाए। लोगों को कठिन लगता है। ऐसी बात सुनकर सम्प्रदाय के लोगों को कठिन लगता है कि यह क्या? यह सब पूरा उत्थापित कर डालते हैं।

बापू! एक महाप्रभु को देखने के लिये दूसरे किसी की आवश्यकता नहीं है। वह महाप्रभु चैतन्य अन्दर है। जिसकी अस्ति के बिना दूसरी चीज़ है, ऐसा जानेगा कौन? आहाहा! जिसकी मौजूदगी बिना... ऊर्ध्वता स्वभाव है न, ऊर्ध्वता? समता, रमता, ऊर्ध्वता। किसी भी (चीज़ को) जानने के काल में ज्ञान की अस्तिवाला तत्त्व न हो तो जानेगा किस प्रकार? आहाहा! किसी भी चीज़ को जानने के काल में। अरे! राग को जानने के काल में... आहाहा! शरीर, वाणी, मन, इस बाह्य की चीज़ को जानने के काल में भी जाननेवाला न हो तो 'यह है' - ऐसा जानेगा कौन? आहाहा! यह जाननेवाला जानने में आता है, इससे भिन्न और यह जाननेवाला एकरूप है, उसमें अनेक विकल्प उठाना, उससे भी वह रहित है। आहाहा! यह १९३ श्लोक (पूरा) हुआ।

मुमुक्षु : पर्याय में यह सब ज्ञान वर्तता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय विकल्प बिना मुड़ गयी है। विकल्प बिना पर्याय द्रव्य में ढल गयी है। आहाहा! परन्तु मैं ध्यान करता हूँ, यह विकल्प नहीं। यह बात छूट गयी; इसलिए पर्याय, स्वभाव में ढल गयी है। एकरूप चैतन्य भगवान... आहाहा! जिसकी अखण्डता में खण्ड कभी नहीं होता। ऐसा अखण्ड तत्त्व भगवान, उसे विकल्प के ध्यान की जाल की भी जिसे आवश्यकता नहीं। आहाहा! वह तो उसकी ओर ढल गया है। नमन हो गया, आदर हो गया, स्वीकार हो गया। आहाहा! तब उसे सम्यग्दर्शन हुआ, तब उसे मोक्ष का मार्ग शुरु हुआ। आहाहा! १९३ (कलश पूरा हुआ)।

श्लोक-१९४

(अनुष्टुप्)

भेदवादाः कदाचित्स्युर्यस्मिन् योगपरायणे ।
तस्य मुक्तिर्भवेन्नो वा को जानात्यार्हते मते ।।१९४।।

(वीरछन्द)

भेदवाद उत्पन्न कदाचित् हो जिस योग परायण में।
कौन जानता उसकी मुक्ति है या नहीं अर्हत् मत में॥१९४॥

[श्लोकार्थः] जिस योगपरायण में कदाचित् भेदवाद उत्पन्न होते हैं (अर्थात् जिस योगनिष्ठ योगी को कभी विकल्प उठते हैं), उसकी अर्हत के मत में मुक्ति होगी या नहीं होगी, वह कौन जानता है ?॥१९४॥

श्लोक- १९४ पर प्रवचन

१९४ (कलश)

भेदवादाः कदाचित्स्युर्यस्मिन् योगपरायणे ।
तस्य मुक्तिर्भवेन्नो वा को जानात्यार्हते मते ।।१९४।।

आहाहा! मुनिराज तो दो विभाग करते हैं। आहाहा!

श्लोकार्थ : जिस योगपरायण... है। आत्मा में जो योग अर्थात् जुड़ान है। चैतन्यसत्ता की महासत्ता में जिसका अन्दर जुड़ान है, कहते हैं। **योगपरायण में कदाचित् भेदवाद उत्पन्न होते हैं...** कदाचित् उसमें ध्यान में एकाग्रता का विकल्प उठे। आहाहा! अन्दर स्वरूप का ध्यान करने पर... योग अर्थात् जुड़ान। चैतन्यसत्ता की सत्व का सत्व जो त्रिकाली है। है, वह द्रव्य है। वस्तु है, वह तो अनादि है, ऐसी चीज़ पर ध्यान करते हुए योगपरायण... आहाहा! उसका जुड़ान करते-करते लक्ष्य में कहीं यदि भेद और विकल्प आवे... आहाहा! भेद और विकल्प यदि उठे। **भेदवाद उत्पन्न होते हैं (अर्थात् जिस योगनिष्ठ योगी को कभी विकल्प उठते हैं), उसकी अर्हत के मत में मुक्ति होगी या नहीं**

होगी, वह कौन जानता है ? आहाहा! अर्थात् कि विकल्प से उसे मुक्ति नहीं होगी। भेद से मुक्ति नहीं होगी। आहाहा!

भगवान आत्मा वस्तु है, एकरूप है, पूर्ण है। उसमें भी वापस भेदवाद लक्ष्य में उठा... आहाहा! तो उसे **अर्हत के मत में मुक्ति होगी या नहीं होगी, वह कौन जानता है ?** अर्थात् भेदवाले को मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! ऐसी बात है। कहाँ से कहाँ जाना ? कितना करना ? अभी बाहर से निवृत्त नहीं होता। अन्दर में सुनने का भी समय नहीं लेता। एकाध -दो घण्टे दे, उसमें कुछ पकड़ में नहीं आता। आहाहा! किसी की काललब्धि पक गयी हो और आ जाए तुरन्त। वह पुरुषार्थ से जब होता है... आहाहा!

मुमुक्षु : काललब्धि... पुरुषार्थ से...

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थ से जब होता है, तब काललब्धि भले साथ हो। मूल पुरुषार्थ से है, क्योंकि वीर्य का झुकाव जो अनादि से परसन्मुख है और उस वीर्य का स्वरूप, स्वरूप की रचना करे, वह उसका स्वरूप है। आहाहा! आत्मा का जो वीर्य-बल स्वरूप है, वह स्वरूप की रचना (करे)। शुभ की रचना करे, वह वीर्य नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा का विकल्प। पंच महाव्रत का विकल्प, शास्त्र के पठन का विकल्प, वह तीनों नपुंसक है क्योंकि आत्मा का जो वीर्य-बल है, वह तो उसके स्वरूप की शुद्धि की रचना करे, वैसा उसका स्वरूप है। शुद्धि की रचना करे, वह उसका स्वरूप है। उसमें अशुद्धता का स्वरूप आवे, उसे नपुंसक कहा है। आहाहा! क्योंकि नपुंसक को वीर्य नहीं होता, इसलिए पुत्र नहीं होता; उसी प्रकार शुभभाव में धर्म प्रजा नहीं होती। वह शुभभाव नपुंसक है। आहाहा!

मुमुक्षु : आप सूक्ष्म बात फरमाते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु ही ऐसी है और उसमें यह गाथाएँ मौके से आयी है। आहाहा!

सबसे छूटकर अकेला आत्मा का ध्यान करने पर भी जो विकल्प उठे... आहाहा! तो भी उसकी मुक्ति नहीं है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! चारों ओर से समेटकर... पहले योगपरायण कहा है न ? योगपरायण है। चारों ओर से ऐसे छूटा है। ऐसा लिया है। योग में परायण है। उसे कदाचित् भेदवाद उत्पन्न हो। आहाहा! गजब करते हैं। दिगम्बर

सन्त की वाणी केवली की दिव्यध्वनि है! ऐसी वाणी कहीं अन्यत्र नहीं है। आहाहा! सत्यार्थ... सत्यार्थ...

ऐसा भगवान चैतन्यकन्द है, पदार्थ है, वस्तु है, वह एकरूप चीज़ है। उसका ध्यान करते-करते यदि च्युत हो गया और विकल्प में आ गया, तो कहते हैं कि अरहन्त के मत में उसकी मुक्ति होगी या नहीं? अन्यमती भले कोई ऐसे को मुक्ति ठहरावे। आहाहा! परन्तु वीतरागमार्ग में इस विकल्पवाले की मुक्ति नहीं है। आहाहा! वीतराग सर्वज्ञपरमात्मा के पन्थ में योगपरायण जीव को भी यदि विकल्प उठे... आहाहा! गजब है। अन्तर में जिसकी एकाग्रता है, उसमें से हटकर यदि विकल्प उठा, उसे अरिहन्त के मत में मुक्ति नहीं है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। अनजाने व्यक्ति को तो ऐसा लगे कि ऐसी कैसी बात? यह बाहर से कुछ यह करना... यह करना... यह करना... वह तो कोई बात आती नहीं। यह तो अन्दर में विकल्प करना, वह भी नुकसान होता है। आहाहा!

अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य के ध्यान में भी च्युत होकर... आहाहा! ज्ञान में से भी च्युत होकर यदि विकल्प उठा, भेद पड़ा, उसकी मुक्ति अरहन्त मत में नहीं है। कौन जाने अर्थात् कि अरहन्त के मत में मुक्ति नहीं है। आहाहा! है? **उसकी अर्हत के मत में...** ऐसा क्यों कहा? - कि दूसरे मत में तो बहुत-बहुत राग से, व्यवहार से, निमित्त से, पर्याय से, विकल्प से बहुत धर्म मनवाया है। वीतराग तीन लोक के नाथ... आहाहा! उन्होंने एक अभेद में दृष्टि करके अभेद से इसे समकित होता है और मुक्ति होती है। भेद से, विकल्प से भी नहीं होगी, यह अरहन्त के मत में कहा है। वह अन्यत्र कहीं नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षु : दूसरे मत में तो दुःखी हो, ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरे मत में कुछ की कुछ बातें हैं। जैन के वाड़ा में भी यह श्वेताम्बर, स्थानकवासी, मन्दिरवासी में कुछ की कुछ बाहर की बातें, थोथा। आहाहा!

यहाँ तो भगवान वस्त्ररहित, वस्त्ररहित सब छोड़ा है, शुभभाव छोड़ा है और योगपरायण में अन्दर गया है परन्तु यदि वहाँ से हट गया... आहाहा! जरा यदि विकल्प का धक्का लग गया तो मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! ऐसी बात है। बहुत ऊँचा कलश! अकेला माल-माल भरा है। आहाहा! अकेला अखण्ड प्रभु चैतन्यसत्ता है न, एकरूप सत्ता है, उसमें और दो रूप विकल्प दूसरा कहाँ से आया? यह गुणी है और यह गुण है, ऐसा भी विकल्प उसके स्वरूप में कहाँ है? और यह द्रव्य है और यह पर्याय है, ऐसे भेद का

विकल्प भी उसमें कहाँ है ? वह तो विकल्परहित पर्याय त्रिकाल ज्ञायकस्वभाव में ढल जाती है, तब उसे समकित होता है। कोई विकल्प पहले आया था, इसलिए उसके कारण अन्दर हुआ, (ऐसा नहीं है)। बहुत से प्रश्न पूछते हैं न ? चन्दुभाई डॉक्टर बहुत पूछते थे। राजकोट में। ऐसा कि समकित होने से पहले कौन सा विकल्प होता है ? विकल्प कौन सा होता है, इसका मेल नहीं है। विकल्परहित होना, वह वस्तु है। आहाहा!

मुमुक्षु : अन्दर में...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर गया, इसलिए हो गया। आनन्द का धाम स्वयं ज्योति सुखधाम फल है, क्षेत्र है। वह असंख्यप्रदेशी क्षेत्र है। आहाहा! जैन के अतिरिक्त असंख्यप्रदेशी किसी ने जाना नहीं। किसी ने जाना नहीं। आहाहा! श्वेताम्बर में भी असंख्यप्रदेश कहे हैं, परन्तु वह फेरफार है। ३४३ राजू में अन्तर है। अन्तर है तब ३४३ राजू प्रमाण आत्मा के प्रदेश हैं। यह मिथ्या बात है। बात समझ में आयी ? उन्होंने स्वयं उनकी पुस्तक में लिखा है। पुस्तक है यहाँ। भाई! अपने ३४३ राजू कहते हैं परन्तु वह अपने सब मेल से मिलता नहीं है। ऐसा वहाँ लिखा है, पुस्तक है। श्वेताम्बर की ओर का, हों! तब आत्मा के प्रदेश लोकप्रमाण है। तब लोक के प्रदेश का मेल नहीं, वहाँ आत्मा के प्रदेश का मेल कहाँ रहा ? बहुत अन्तर पड़ गया, प्रभु!

मुमुक्षु : अपने आप छोटा हो गया न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : छोटा नहीं। वह वस्तु ही पूरी असंख्य प्रदेश जो है। क्षेत्र ही उसका इतना है। वह रूप ही है, उस स्वरूप है। उसे दूसरे प्रकार से कहना हो तो फेरफार... आहाहा! वह भी विवाद में चढ़ा है न ? विद्यानन्दजी! '**अपदेशसंतमज्झं**' अखण्ड प्रदेश लेना। अखण्ड लेना। असंख्य नहीं, एकरूप वहाँ है।

मुमुक्षु : ....उलझ जाए, वह नहीं उलझा।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो मूल ब्राह्मण है और असंख्यप्रदेश वेदान्त में है नहीं और सबको ठीक अच्छा लगवाना है। असंख्यप्रदेशी होवे तो एक सर्वज्ञ वीतराग और वह भी दिगम्बर जैन के अतिरिक्त असंख्यप्रदेशी आत्मा पूरा अन्यत्र कहीं नहीं है। पूरा। श्वेताम्बर ने असंख्य प्रदेश कहा है, परन्तु अधूरा। आहाहा! है न। है तो असंख्यप्रदेशी कहा है, परन्तु पूरा नहीं। वह असंख्यप्रदेशी लोक के ३४३ क्षेत्र के राजू प्रमाण चाहिए, तत्प्रमाण नहीं है।, वह मेल नहीं खाता तो आत्मा के असंख्यप्रदेश का मेल नहीं खाता। आहाहा! पुस्तक है।

श्वेताम्बर का, हों! श्वेताम्बर स्वयं लिखते हैं। परन्तु विचार कौन करता है। ऊपर से जिस वाड़े में जन्मे, जिस कुल में जन्मा और जिसका संग रहा, जिसका परिचय रहा, उसकी मान्यता में पड़े, हो गया। 'जैसे कुले... जैन...' जिसका वास रहा और जिस कुल में जन्मे, बस! यह हमारा धर्म। हो गया! इसमें सत्य है या फेरफार है (यह निर्णय नहीं करता।) क्यों, टोलियाजी! उसे कहाँ तुम्हारे दरकार थी? यह तो शान्ताबेन और आये बेचारे, तब बेमन से फिर आये हैं ये। आहाहा! यह तो संसार में बहुत प्रकार बनते हैं न। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, अरे! अरहन्त का मत... आहाहा! सर्वज्ञ भगवान का अभिप्राय, उस वस्तु में ध्यान करते-करते यदि च्युत हो गया और भेद में, विकल्प में आ गया कि यह गुण है और गुणी है, ऐसा भी विकल्प उठा, उसकी मुक्ति अरहन्त मत में नहीं है। आहाहा! ऐसा सुना नहीं। ऐसा रामजीभाई के समय नहीं था। आहाहा! ये बुद्धिवाले थे परन्तु यह बात तब नहीं थी। सामायिक, प्रोषध, प्रतिक्रमण करे, गीत गाते। गाते थे खबर है। आहाहा! यह चीज़!

मुमुक्षु : तब यह कहाँ था?

पूज्य गुरुदेवश्री : तब कुछ था ही नहीं। ...माँ बैठे। सामायिक करके फिर एक ओर बैठे। गायन बोले परन्तु यह बात ही नहीं थी। आहाहा!

वाह! धन्य अवतार जिसका! आहाहा! एकरूप की दशा में भिन्न भेदभाव करना कि यह पर्याय है और यह द्रव्य है, ऐसा भी यदि विकल्प उठा तो वीतराग के मत में मुक्ति नहीं होगी। उसे बन्ध होगा। आहाहा! फिर भले भविष्य में विकल्प तोड़कर करे परन्तु विकल्प है, तब तक उसकी मुक्ति नहीं होगी। आहाहा! इतना विकल्प जो भेद का, हों! है न? **भेदवादा:** वस्तु है, यह पर्याय है और यह गुण है और यह द्रव्य है। इस नियमसार में आवश्यक कहा न? भाई! द्रव्य-गुण-पर्याय तीन का विचार करे, वह भी परावश्यक है, पराधीन है। आहाहा! आवश्यक के अधिकार में (कहा है)। द्रव्य, यह द्रव्य है, स्वयं वस्तु अखण्ड, इसका गुण... चेतन है, वह द्रव्य है; उसका चैतन्य है, वह गुण है; उसकी वर्तमान राग को और पर को जानती है, वह पर्याय है। ऐसे तीन प्रकार के विचार में रुकता है, वह पराधीन है। उसे आवश्यक-अवश्य क्रिया जो करनी है, वह नहीं की। वह अनावश्यक है। आहाहा! ऐसा है। यह गाथा पूरी हुई।

गाथा-१२१

कायाईपरदव्वे थिरभावं परिहरत्तु अप्पाणं।
तस्स हवे तणुसग्गं जो झायइ णिव्वियप्पेण।।१२१।।

कायादिपरद्रव्ये स्थिरभावं परिहृत्यात्मानम्।
तस्य भवेत्तनूत्सर्गो यो ध्यायति निर्विकल्पेन।।१२१।।

निश्चयकायोत्सर्गस्वरूपाख्यानमेतत्। सादिसनिधनमूर्तविजातीयविभावव्यञ्जन-पर्यायात्मकः स्वस्याकारः कायः। आदिशब्देन क्षेत्रवास्तुकनकरमणीप्रभृतयः। एतेषु सर्वेषु स्थिरभावं सनातनभावं परिहृत्य नित्यरमणीयनिरञ्जननिजकारणपरमात्मानं व्यवहारक्रिया-काण्डाडम्बरविविधविकल्प-कोलाहलविनिर्मुक्तसहजपरमयोगबलेन नित्यं ध्यायति यः सहज-तपश्चरणक्षीरवारांराशिनिशी-थिनीहृदयाधीश्वरः, तस्य खलु सहजवैराग्यप्रासादशिखर-शिखामणेर्निश्चयकायोत्सर्गो भवतीति।

परद्रव्य काया आदि सें परित्याग स्थैर्य, निजात्म को।
ध्याता विकल्प-विमुक्त, उसको नियत कायोत्सर्ग हो॥१२१॥

अन्वयार्थ : [कायादिपरद्रव्ये] कायादि परद्रव्य में [स्थिरभावम् परिहृत्य] स्थिर भाव छोड़कर [यः] जो [आत्मानम्] आत्मा को [निर्विकल्पेन] निर्विकल्परूप से [ध्यायति] ध्याता है, [तस्य] उसे [तनूत्सर्गः] कायोत्सर्ग [भवेत्] है।

टीका : यह, निश्चयकायोत्सर्ग के स्वरूप का कथन है।

सादि-सांत मूर्त विजातीय-विभाव-व्यंजनपर्यायात्मक अपना आकार वह काय। 'आदि' शब्द से क्षेत्र, गृह, कनक, रमणी आदि। इन सबमें स्थिरभाव—सनातनभाव छोड़कर (-कायादिक स्थिर हैं, ऐसा भाव छोड़कर) नित्य-रमणीय निरंजन निज कारणपरमात्मा को व्यवहार क्रियाकाण्ड आडम्बर सम्बन्धी विविध विकल्परूप कोलाहल रहित सहज-परम-योग के बल से जो सहज-तपश्चरणरूपी क्षीरसागर का

चन्द्र (-सहज तपरूपी क्षीरसागर को उछालने में चन्द्र समान ऐसा जो जीव) नित्य ध्याता है, उस सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि को (-उस परम सहज-वैराग्यवन्त जीव को) वास्तव में निश्चयकायोत्सर्ग है।

गाथा- १२१ पर प्रवचन

१२१, ऐसा सूक्ष्म है, भाई! आहाहा!

कायाईपरदव्वे थिरभावं परिहरत्तु अप्पाणं।
तस्स हवे तणुसग्गं जो झायइ णिव्वियप्पेण।।१२१।।

परद्रव्य काया आदि सें परित्याग स्थैर्य, निजात्म को।
ध्याता विकल्प-विमुक्त, उसको नियत कायोत्सर्ग हो॥१२१॥

लो! यह कायोत्सर्ग आया। तुम्हारा तत्सूत्री करणेण में आता है न? तत्सूत्री में आता है...

मुमुक्षु : .... अपने.... में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह आता है, परन्तु वह तो व्यवहार के विकल्प की बातें हैं। व्यवहार का विकल्प है, तब ऐसा होता है, इतना बतलाया है परन्तु वह वस्तुस्थिति नहीं है। आहाहा!

कायोत्सर्ग अर्थात् आत्मा असंख्यप्रदेशी काय है, जीव शरीर / काय है। उसके अतिरिक्त का कोई भी विकल्प उसे लागू नहीं पड़ता। वह विकल्प कोई होवे तो वह कायोत्सर्ग नहीं कहलाता। उसने काया को नहीं छोड़ा। आत्मा की पूर्ण काया को पकड़कर विकल्पादि सबको छोड़ना, वह सब काया है। दो काया है। एक आत्मकाया चैतन्य, एक विकल्प से लेकर यह सब काया। आहाहा! ऐसा है।

मुमुक्षु : बाहुबलीजी ने बारह महीने कायोत्सर्ग किया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कायोत्सर्ग था। वे तो समकिती थे, मुनि थे परन्तु शल्य (विकल्प) रह गया। शल्य रह गया कि यह इतना। बाकी समकिती, मुनि थे, परन्तु शल्य रह गया कि इसकी जमीन पर खड़ा हूँ। इतना रह गया। वे अटके तो केवलज्ञान अटक

गया। आहाहा! मुनि थे, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते थे। बारह महीने तक इस प्रकार झूलते (थे) परन्तु जरा अन्दर में खटक रहती थी। इस जमीन पर खड़ा हूँ। उसमें भरत चक्रवर्ती आये और जहाँ चरणवन्दन करते हैं, वहाँ उन्हें तो... ओहोहो! इन्हें तो कुछ नहीं। कुछ नहीं, ऐसे अन्दर उतरने पर केवलज्ञान हो गया। आहाहा! तैयारी तो थी ही। छठे-सातवें में तो थे परन्तु जरा विकल्प का शल्य रह गया था, इससे केवल(ज्ञान) में आगे नहीं जा सके थे। हाथ में बेलें लिपट गयी थीं। जंगल में बारह महीने खड़े रहे। हाथ और पैर में बेलें लिपट गयी हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पैर और हाथ हिलाये भी नहीं। आहाहा! क्योंकि हिलावे तो ऐसी वनस्पति रहे नहीं। बराबर हाथ में और पैर में बेल लिपटी है। हाथ को, पैर को स्थिर किया है। आहाहा! वह तो जड़ की क्रिया है परन्तु स्थिर हुई है। अन्दर में फेरफार विकल्प रह गया। छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते थे... आहाहा! एक विकल्प रह गया कि यह जमीन उनकी है। वे आकर चरणवन्दन करते हैं और (विकल्प) छूट जाता है। विकल्प छूटकर केवलज्ञान हो जाता है। आहाहा! इतना भी शल्य है। भले मिथ्यादर्शन नहीं। तीन प्रकार के शल्य हैं न? माया, मिथ्यात्व और निदान। तीन शल्य है। जरा इस प्रकार की माया रह गयी। आहाहा! विषल्इं करणेन। ऐसा कायोत्सर्ग में नहीं आता। विषल्इं करणेन। तीन शल्यरहित होवे तो कायोत्सर्ग होता है। अब इस मिथ्यात्व की शल्य की खबर नहीं होती और उसे कायोत्सर्ग होगा? उसमें आता है या नहीं? विषल्इं करणेन... विषल्इं करणेन... विषल्इं करणेण पहाड़े बोलते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : मुनि विशल्ली ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुनि को होता है, कायोत्सर्ग होता है न?

मुमुक्षु : निःशल्यो व्रती होवे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : उन्हें छह आवश्यक होते हैं। छह आवश्यक का विकल्प आता है। सामायिक चौबिसंथो, उसमें छह आवश्यक आते हैं। छद्मस्थ है न! यहाँ तो कहते हैं कि वह विकल्प तो ठीक परन्तु अभेद में भेद का विकल्प करे, तो भी नहीं। छठवें गुणस्थान में आवे तो सही। बड़ा अधिकार आता है। आचार्य ने रचना की है जिस प्रतिक्रमण की, उस प्रतिक्रमण को करता हुआ साधु, उसे छोड़कर अन्दर में जाना, ऐसा आता है। आहाहा!

टीका : यह, निश्चयकायोत्सर्ग के स्वरूप का कथन है। निश्चयकायोत्सर्ग।

यह विकल्प भी जड़ की काया है। आहाहा! भगवान ज्ञान काया है। प्रभु का ज्ञान शरीर है, प्रभु का आनन्द और वीतराग शरीर है। इसके अतिरिक्त विकल्प आदि सब काय है, वह जड़ काय है। यह चैतन्य काय है। आहाहा! ऐसा है। **निश्चयकायोत्सर्ग के...** निश्चय से काया का त्याग, उसके **स्वरूप का कथन है।** आहाहा! **सादि-सान्त मूर्त विजातीय-विभाव-व्यंजनपर्यायात्मक अपना आकार वह काय।** यह पहले शरीर की बात की है। सादि-सान्त। उत्पन्न हुआ है, वह उसकी सादि है और नाश होनेवाला है।

मूर्त... है। **विजातीय**- आत्मा से विजात है। आहाहा! आत्मा चैतन्य जाति है, उसकी यह विजाति है। **विभाव-व्यंजनपर्यायात्मक...** है। यह विजाति। विभाव व्यंजनपर्याय यह शरीर है। आहाहा! **अपना आकार वह काय।** उसका यह आकार, वह काया है। **'आदि' शब्द से क्षेत्र,...** आहाहा! कायोत्सर्ग में अकेली काया का विसर्ग नहीं, ऐसा कहते हैं। वह मेरा घर है, वह मेरा क्षेत्र है, उसका भी त्याग। **गृह,...** क्षेत्र और घर का त्याग। आहाहा! उसे कायोत्सर्ग होता है। घर है, वह सब पर कायोत्सर्ग में आता है, काया में आता है। जैसे यह शरीर काया है, चैतन्यमय भगवान काया है। ऐसे शरीर, क्षेत्र और घर परकाया में आते हैं। वे परकाय हैं। आहाहा!

कनक,... सोना। सोना, वह परकाय में जाता है। आहाहा! **रमणी...** स्त्री परकाय में जाती है। आहाहा! स्वकाय तो चैतन्यमूर्ति इसकी स्वकाय है। रमणी और उसका पुत्र और पुत्री इत्यादि-इत्यादि। है? **आदि..** है न? **रमणी आदि।** आहाहा! पुत्र-पुत्री यह सब परकाय है। आहाहा! स्वकाय और परकाय दो ही बात। उसमें स्वकाय में अकेला आत्मा आता है। परकाय में विकल्प से लेकर पूरी दुनिया (आती है)। आहाहा! **इन सबमें स्थिरभाव—सनातनभाव छोड़कर...** आहाहा! यह क्या लिया? यह आत्मा तो काया है, वह स्थिर है, नित्य है। इस (पर) वस्तु को नित्य और स्थिर करना चाहता है, विकल्प से लेकर पर को। आहाहा! यह स्थिर भाव, सनातन भाव। राग और शरीर और स्त्री, यह सब सनातन परभाव है। पुराना, पुराना अनादि का यह परभाव है, परकाय है। आहाहा!

गृह, कनक, रमणी आदि। पुत्र-पुत्री, होशियार पुत्र हुआ हो तो ऐसे अन्दर से अभिमान चढ़ जाए कि आहाहा! महीने में लाख-लाख रुपये पैदा करे और हमारी कुछ आवश्यकता नहीं पड़ती। बहुत होशियार है। कहते हैं, वह सब परकाय है। तेरी काय नहीं।

आहाहा! तेरी काय में वह नहीं और उसकी काय में तू नहीं। आहाहा! ऐसा स्थिरभाव अर्थात् कि ये मेरे हैं और टिके रहेंगे। आहाहा! विकल्प भी टिका रहेगा, स्त्री टिकी रहेगी, सोना टिका रहेगा, घर टिका रहेगा। आहाहा! ऐसा जो स्थिर भाव सनातन, पुराना, अनादि का पर को अपना मानने का भाव **छोड़कर (-कायादिक स्थिर हैं ऐसा भाव छोड़कर)...** कायादि सब स्त्री आदि स्थिर है। जवान है तो २५-५० वर्ष तो रहेगी या नहीं? यह सब अस्थिर है। किस समय... आहाहा!

अभी एक लड़की मर गयी थी न? विवाह किया, तब उसके पिता ने तीस हजार रुपये खर्च किये थे। मुम्बई में। लड़का नहीं था, लड़की थी। तीस हजार। वह एक सेकेण्ड में गुजर गयी। आया था। नाम हम जानते नहीं। आया था। आहाहा! लाखों रुपये दान दे दहेज में। सोना रखे, सौ-दो सौ तोला सोना रखे, पंखा और पंखा क्या कहलाता है यह? बिझणा। वह सब रखे। कपड़ा और साड़ियों को पलंग के ऊपर बिछावे, फिर सगे-सम्बन्धियों को देखने बुलावे कि देखो यह। आहाहा! प्रभु! यह तो परकाय है न, कहते हैं। आहाहा! यह तो पर शरीर है न? आहाहा! विकल्प से लेकर, प्रभु! यह सब पर शरीर है, परकाल है। स्वकाल तो अन्दर आनन्द का नाथ अखण्डानन्द प्रभु ज्ञानशरीर। कहते हैं न? आता है। ज्ञानशरीर। ज्ञानविग्रहं। ज्ञानरूपी शरीर। वह अखण्ड है, अभेद है, एकरूप है। उससे जितने भेद और पर के भाव, उन सबको स्थिर करके माना है कि ये स्थिर रहेंगे... रहेंगे। आहाहा!

सनातनभाव छोड़कर (-कायादिक स्थिर हैं, ऐसा भाव छोड़कर) नित्य-रमणीय निरंजन... आहाहा! आया भगवान (आत्मा)। नित्य-रमणीय है। भगवान तो नित्य -रमणीय आनन्द में रमे, वह स्वरूप है। **निरंजन...** आहाहा! जिसे मैल और अंजन कुछ है नहीं—ऐसा चैतन्यदल, अखण्डानन्द चैतन्य काय... आहाहा! ज्ञानविग्रह। ज्ञान के साथ अनन्त गुण आये। ज्ञान की प्रधानता से उसे ज्ञानशरीर कहा। भगवान आत्मा को ज्ञानशरीरी कहा है। आहाहा! वह **नित्य-रमणीय निरंजन...** अंजन-वंजन—मैल भगवान आत्मा में नहीं है। आहाहा! और **कारणपरमात्मा को...** आहाहा! ऐसा जो कारण प्रभु त्रिकाली नित्यानन्द, प्रभु, वह कारणपरमात्मा। जिसमें पर्याय की भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा!

ऐसे **कारणपरमात्मा को व्यवहार क्रियाकाण्ड आडम्बर सम्बन्धी...** आहाहा! व्यवहार का क्रियाकाण्ड। यह करना... यह करना... यह करना... आहाहा! **व्यवहार**

क्रियाकाण्ड आडम्बर... वह तो सब आडम्बर है। आहाहा! शुभभाव की क्रिया, वह तो सब आडम्बर है। सामायिक, प्रौषध, प्रतिक्रमण, अपवास, आठ अपवास, चतुर्विध आहार त्याग कर नकोरडा किया, वर्षीतप किया और फिर उसके पारणे में धामधूम करना। आहाहा! यह सब आडम्बर है। इसमें जरा भी धर्म का अंश नहीं है। आहाहा! श्वेताम्बर में पुस्तकों का बनाते हैं। पुस्तकों की बड़ी शोभायात्रा निकालते हैं। पुस्तक। यह सब आडम्बर है। आहाहा!

इस **आडम्बर सम्बन्धी विविध विकल्परूप कोलाहल...** आहाहा! भगवान निर्विकल्प चैतन्य के अतिरिक्त विकल्प से लेकर सब कोलाहल है, कहते हैं। उसमें कहीं शान्तपना नहीं है। आहाहा! स्वयं टीका बनाते हैं तो उसमें विकल्प है तो कहते हैं। कोलाहल है, ऐसा कहते हैं। मेरा कर्तव्य नहीं। विकल्प आ जाता है और होता है। उससे शरीर, वाणी-वाणी से पुस्तक बन जाती है। आहाहा! **व्यवहार क्रियाकाण्ड आडम्बर सम्बन्धी...** आडम्बर, देखा? आहाहा! **विविध विकल्परूप कोलाहल रहित...** बाहर के लक्ष्यवाले विकल्प के कोलाहल से भिन्न। कोई भी बाह्य का लक्ष्य, बाह्यपदार्थ पर उसके लक्ष्य में होनेवाला जो विकल्प। आहाहा! उस कोलाहलरहित।

सहज-परम-योग के बल से... स्वाभाविक परमयोग के अन्तर बल से। आहाहा! अन्तर आनन्द और शान्ति के स्वाभाविक बल से। **जो सहज-तपश्चरणरूपी...** स्वाभाविक तपस्या अर्थात् स्वरूप में लीनता। आहाहा! उस बाह्य क्रियाकाण्ड और व्यवहार क्रियाकाण्ड को आडम्बर कह दिया। यह तो सहज तपश्चरण। वस्तु में अन्दर एकाग्रता से अतीन्द्रिय आनन्द की शोभा बढ़ जाए, वृद्धि पाये, ज्वार पाये। आहाहा! ऐसा जो तपश्चरण उसका नाम तपश्चर्या। यह अपवास करना और अमुक करना, यह व्यवहार है, आडम्बर, क्रियाकाण्ड का आडम्बर है। आहाहा!

(स्वाभाविक) **सहज-तपश्चरणरूपी...** आहाहा! **क्षीरसागर का चन्द्र...** है? **क्षीरसागर का चन्द्र...** अर्थात् कि जैसे चन्द्र उगे और क्षीरसागर उछले... आहाहा! वैसे **(-सहज तपरूपी क्षीरसागर को उछालने में चन्द्र समान ऐसा जो जीव)...** अपने अतीन्द्रिय आनन्द को उछलाने में... आहाहा! पूर्णिमा का चन्द्र हो, तब समुद्र ज्वार में होता है। पूर्णिमा के दिन ज्वार आता है। ऐसा चन्द्र और समुद्र को सम्बन्ध है। आहाहा! पूर्णिमा का ज्वार होता है।

मुमुक्षु : ज्वार आवे और उस समय भुजिया बनावे तो तेल कम चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं होता। वह शिथिल पड़े। ज्वार के समय वह तेल बहुत काम नहीं करता। सुना है। सब सुना है। सब बातें सुनी है। उसकी इतनी हवा बाहर आती है।

यहाँ **सहज-तपश्चरण...** स्वाभाविक तपश्चरण अर्थात् चैतन्यस्वरूप में रमणता, वह स्वाभाविक तपस्या। आहाहा! इसका नाम तपस्या वीतराग कहते हैं। यहाँ तो बाहर में वर्षीतप करे और दो-पाँच हजार खर्च करे। ओहोहो! तपस्या की, भाई! छोटी उम्र में। २५-३० वर्ष की उम्र हो और करे तो उसे तो... आहाहा! अब विधवा-विधवा महिला हो तो वह तो छोटी उम्र में करे। **(-सहज तपरूपी क्षीरसागर को उछालने में चन्द्र समान ऐसा जो जीव)...** क्षीरसागर को उछालने में सहज तपरूपी चन्द्र। आहाहा! स्वाभाविक तपस्या। अन्दर एकाग्रता क्षीरसागर को उछालने में निमित्त है, उसी प्रकार भगवान का आत्मा अन्दर में एकाग्रतारूपी चन्द्र-तपस्या, वह आत्मा की शान्ति को उछालने में कारण है। आहाहा!

(चन्द्र समान ऐसा जो जीव)... आहाहा! **नित्य ध्याता है,...** नित्य आत्मा का ध्यान करता है। आहाहा! विकल्प की दूसरी जाल छोड़कर... आहाहा! अकेला भगवान आत्मा का जो ध्यान करता है, वह क्षीरसागर को उछालने समान जीव है। जैसे पूर्णिमा का चन्द्र हो और समुद्र उछले; वैसे भगवान स्वयं उसमें एकाग्र हो, वह जीव स्वयं शान्ति को उछालने में कारण है। विकल्प कारण नहीं है। आहाहा! अब ऐसी सूक्ष्म बातें, लो! **(-सहज तपरूपी क्षीरसागर को उछालने में चन्द्र समान ऐसा जो जीव) नित्य ध्याता है,...** आहाहा! ऐसे आत्मा को नित्य—कायम ध्यान में रखता है। मुनि की उत्कृष्ट बात है न! मुनि ध्यान में अन्दर आनन्द में हमेशा रहते हैं। वे ध्यान में रहें, वही मुनिपना है। पंच महाव्रत और यह सब विकल्प कहीं मुनिपना नहीं है। आहाहा!

नित्य ध्याता है, उस सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि को... आहाहा! सहज वैराग्यरूपी महल। सहज। आनन्द के नाथ का जहाँ अवलम्बन किया, अन्तर भगवान अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, उसका अवलम्बन किया, वहाँ पर से सहज वैराग्य है। हठ से नहीं। सहज वैराग्य। पर से उदास है। विकल्पमात्र से और दूसरे

क्रियाकाण्डमात्र से (उदास है)। आहाहा! **सहज वैराग्यरूपी महल के शिखर के शिखामणि...** आहाहा! वैराग्य में जम गया है, कहते हैं। अन्तर की दृष्टि करके स्थिरता में जम गया है। आहाहा! सहज वैराग्यरूपी महल, उसका वह शिखर, उसका वह शिखामणि। आहाहा! **(-उस परम सहज-वैराग्यवन्त जीव को)...** -उस परम सहज-वैराग्यवन्त जीव को **वास्तव में निश्चयकायोत्सर्ग है।** आहाहा! वह तो यह कायोत्सर्ग ऐसे करे और तत्सूत्री करणेन... अप्पाणं वोसरे... जाओ वह आत्मा को छोड़ देता है। आहाहा! कौन से आत्मा को छोड़ना और किसे नहीं छोड़ना... आहाहा! उसे कायोत्सर्ग कहते हैं।

वास्तव में निश्चयकायोत्सर्ग है। आहाहा! अन्तर के अखण्डानन्द की रमणता में रमने से पर की ओर से विकल्पमात्र से भी वैराग्य, उसके शिखर का महाशिखामणि। आहाहा! निर्विकल्प आनन्द में रमता है, उसे **वास्तव में निश्चयकायोत्सर्ग है।** काया अर्थात् राग और विकल्प भी काया है। उसे छोड़कर... उत्सर्ग है न? कायोत्सर्ग। आहाहा! शुभभाव, वह भी काया-परकाय है। उसे छोड़कर निश्चय उत्सर्ग अन्दर में रमे, उसे निश्चय कायोत्सर्ग होता है। व्यवहार कायोत्सर्ग हो, वह तो शुभभाव है। वह कहीं कोई मूल चीज़ नहीं है। आहाहा! यह तो तत्सूत्री बोले, उसका ठिकाना नहीं होता। अर्थ की खबर नहीं होती। तत्सूत्री करणेन... अर्थ पूछें तो अर्थ आवे नहीं। आहाहा!

वास्तव में निश्चयकायोत्सर्ग है। विशिष्टता क्या की है? कि एक ओर वीतरागमूर्ति एकदम निर्विकल्प अखण्ड आत्मा। ज्ञानशरीरी, आनन्दशरीरी में एकाग्रता होकर स्थिरता; और विकल्प से लेकर सब वह परकाल है। उस परकाय से हटकर वैराग्य में, वह वैराग्य है, वह परकाय से हटे, उसका नाम वैराग्य है। स्वकाय में एकाग्र हो, उसका नाम ध्यान। आहाहा! **(परम सहज-वैराग्यवन्त जीव को)...** आहाहा! उदास... उदास... दुनिया से उदास। कौन वन्दन करता है और कौन आदर करता है, उसकी भी कुछ पड़ी नहीं। उदास। आहाहा! राजा और करोड़पति आकर चरणवन्दन करे तो उसका लक्ष्य नहीं। अन्दर ध्यान में मस्त है। आहाहा! इसका नाम वास्तव में कायोत्सर्ग कहलाता है।

अब, इस शुद्धनिश्चय-प्रायश्चित्त अधिकार की अन्तिम गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव पाँच श्लोक कहते हैं: श्लोक अब आयेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)